



## शिवसङ्कल्पसूक्त और प्रजापतिसूक्त

वेद ज्ञान के विशाल पर्वत हैं। वेद ज्ञानसागर भी हैं। जैसे विशाल पर्वत से अनेक नदियाँ प्रवाहित होती हैं और सीधी और टेढ़ी नीचे की ओर जनकल्याण के लिए प्रवाहित होती हैं तथा अन्त में समुद्र को प्राप्त होती हैं। वैसे ही वेदरूप ज्ञान के विशाल पर्वत से अनेक स्रोत जनकल्याण के लिए प्रवाहित होते हैं। भारत के सभी ज्ञान के स्रोत वेद से ही प्रवाहित होते हैं, ऐसा सभी मनुष्य जानते हैं। जैसे पर्वत से आया हुआ जल है, अन्य भूमि पर वर्षा से गिरा हुआ जल भी उसी में प्राप्त होता है, और स्रोत भी विशाल होते हैं। वैसे ही वेद से आये ज्ञान स्रोत में अनेक प्रवाह मिल जाते हैं। इसलिए वेद से ही विशाल वाङ्मय दिखाई देता है। यदि किन्हीं शाखाओं में परस्पर विरोध होता है तो वेद के समर्थन मत को ही प्रमाणिक मानते हैं। इसलिए वेद ज्ञान हमेशा आवश्यक है। इसलिए ही यह सूक्त अध्ययन को लिखा गया है।

इस पाठ में शिवसंकल्पसूक्त और प्रजापतिसूक्त पाठ्यरूप से विद्यमान है। पूर्व भाग में **शिवसंकल्पसूक्त** विद्यमान है और उत्तर भाग में **प्रजापतिसूक्त** रखा गया है।

‘मनसैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवम्’। मन से ही अप्रमेय कोई ध्रुव वस्तुओं का दर्शन कर सकते हैं। मन के शुद्ध होने पर सभी वस्तुओं का ज्ञान होता है। उस मन को शुद्ध करने के लिए इस सूक्त में अनेक बार कहा गया है – ‘तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु’ इति। शुक्लयजुर्वेद में चौतीसवें अध्याय में यह शिवसङ्कल्पसूक्त प्राप्त होता है। यहाँ ऋषि आदित्ययाज्ञवल्क्य, त्रिष्टुप् छन्द, और मन देवता है। यहाँ ऋषि अपने मन को कल्याणकारी सङ्कल्प के साथ संयोग करके कहता है। मनोविज्ञान में मन की एक आवश्यक तत्त्व के रूप में कल्पना की गई है। मन के द्वारा ही सभी कर्मेन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियाँ अपने विषय को ग्रहण करने में समर्थ होती हैं। उससे भारतीय दर्शनो में मन उभय इन्द्रिय कहलाता है। इस प्रकार इस पाठ में हम छः मन्त्रों को पढ़ेंगे। इन मन्त्रों को आधार करके आचार्य महीधर भाष्यकार ने भाष्य की रचना की। उस आचार्य महीधरभाष्य को कहते हैं। उसको और भी सरल करके प्रस्तुत किया गया है।



## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- सूक्त में स्थित मन्त्रों का संहितापाठ पढ़ पाने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों के पदपाठ को जान पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का अन्वय कर पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों की व्याख्या कर पाने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों के सरलार्थ को जान पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण के पदों को समझ पाने में;
- सूक्त का तात्पर्य और सूक्त के तत्त्व को समझ पाने में;
- सूक्त का अर्थ जानकार सूक्त की महिमा को समझ पाने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- वैदिक लौकिक के भेद को समझ पाने में;
- वैदिक रूपों को जान पाने में।

### 23.1 मूलपाठ शिवसङ्कल्पसूक्त

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति॥  
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मन शिवसङ्कल्पमस्तु॥१॥  
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीरा।  
यदपूर्वं यक्षमन्त प्रजानां तन्मे मन शिवसङ्कल्पमस्तु॥२॥  
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।  
यस्मान्ऽऽरुते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मन शिवसङ्कल्पमस्तु॥३॥  
येनेदं भूतं भुवनं भविष्य-त्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।  
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मन शिवसङ्कल्पमस्तु॥४॥  
यस्मिन्नुच सामयजूषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवासा।  
यस्मिँश्चित्त सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मन शिवसङ्कल्पमस्तु॥५॥  
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्या-न्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव।  
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मन शिवसङ्कल्पमस्तु॥६॥



टिप्पणियाँ



टिप्पणियाँ

### 23.1.1 मूलपाठ की व्याख्या

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तद् सुप्तस्य तथैवैति॥  
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनं शिवसङ्कल्पमस्तु॥१॥

पदपाठ - यत् जाग्रतः। दूरम्। उदैतीत्युत्-ऐति। दैवम्। तत्। ॐ इत्युं। सुप्तस्य। तथा। एव। एति। दूरङ्गममिति दूरम्-गमम्। ज्योतिषाम्। ज्योतिः। एकम्। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिव-सङ्कल्पम्। अस्तु॥१॥

अन्वय - जाग्रतः यत् दैवं (मनः) दूरम् उत् एति, सुप्तस्य तत् उ तथा एव एति। दूरङ्गमं ज्योतिषाम् एकः ज्योतिः मे तत् मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।

व्याख्या - ऋषि कहते हैं- वह मेरा मन शिवसङ्कल्प हो। शिव कल्याणकारी धर्म विषय सङ्कल्प जिस प्रकार का है उस प्रकार का वह मेरा मन हो। मेरा मन हमेशा धर्म में ही हो कभी भी पापी न बने। तो क्या बने जो मन जागे हुए पुरुष का दूर से भी दूर चला जाता है। चक्षु आदि वस्तुओं को ग्रहण करता है। मन के द्वारा यह सभी कुछ देखा जाता है। और भी। यदः स्थान में उसका पर्यायवाची शब्द उकार है। और जो मन सुप्तावस्था में भी उसी प्रकार वापस आता है जिस प्रकार वह गया था। और जो दूर से भी दूरात् गच्छतीति दूरङ्गमं खश्प्रत्यय है। अतीत अनागत-वर्तमान-में प्रयोग करने वाले पदार्थों का ग्राहक है। और जो मन ज्योतिप्रकाशको का श्रोत्र आदि इन्द्रियों का एक ही ज्योति प्रकाशक प्रवर्तक है। श्रोत्र आदि इन्द्रियों को अपने विषय में लगाता है। आत्मा मन को प्रेरित करता है, मन इन्द्रिय से इन्द्रिय को, अर्थ से न्याय युक्त मन सम्बन्ध को उन दोनों को प्रवृत्त करता है। उस प्रकार का मेरा मन शान्तसङ्कल्प वाला हो।

सरलार्थ - जब कोई पुरुष जागृत अवस्था में रहता है तब उसका दिव्य मन जिस प्रकार से दूर जाता है, वह ही जब सुप्तावस्था में वैसे ही उसी प्रकार से पुन आता है। इस प्रकार जो दूर जाने वाला और ज्योतियों में अद्वितीय मेरा मन वह शुभसङ्कल्प से युक्त हो।

#### व्याकरण

- उदैति - उत्पूर्वक एण-धातु से लट प्रथमपुरुष एकवचन में उदैति रूप बनता है।
- दैवम् - देवशब्द से अणप्रत्ययकरणे पर प्रथमा एकवचन में दैवम् रूप बनता है।
- दूरङ्गमम् - दूरं गच्छतीति विग्रह में दूरपूर्वकगम्-धातु से खश्प्रत्यय करने पर दूरङ्गमम् रूप बनता है।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।  
यदपूर्वं यक्षमन्त प्रजानां तन्मे मनं शिवसङ्कल्पमस्तु॥२॥

पदपाठ - येन। कर्माणि। अपसः। मनीषिणः। यज्ञे। कृण्वन्ति। विदथेषु। धीराः॥ यत्। अपूर्वम्। यक्षम्। अन्तरित्यन्तः। प्रजानामिति प्र-जानाम्। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिव-सङ्कल्पम्। अस्तु॥२॥



**अन्वय** - येन अपसः मनीषिणः धीराः यज्ञे विदथेषु कर्माणि कृण्वन्ति यत् प्रजानाम् अन्तः अपूर्व यक्षं, तत् मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु।

**व्याख्या** - मनीषियों मेधावियों को यज्ञ में जिस मन के द्वारा सत कर्म करते हैं, 'कृ करणे' स्वादि है। मन स्वास्थ्य के विना कार्य में प्रवृत्त करता है। तेषु सत्सु। विदथेषु सत्सु विद्यन्ते ज्ञायन्ते तानि विदथानि तेषु। विदधातु से औणादिक थप्रत्यय। यज्ञसम्बन्धिहवि आदि पदार्थों के ज्ञान में उसका यह अर्थ है। किस प्रकार के मनीषियों को। अपसः अप इति कर्मनाम (निघ० २.१.१)। कार्यों को करने की प्रवृत्ति है जिसमें वे अपस्वन कर्मवन्तश्अस्मायामेधास्रजो विनिः (पा०सू० ५.२.१२१) इससे विन्प्रत्यय विन्मतोर्लुक् (पा०सू० ५.३.६५) इससे इष्ट अभाव में भी छन्द में विनो लुक्। हमेशा कर्मनिष्ठ यह अर्थ है। वैसे धीरा धीमन्तमेधा विद्यमान है जिसमें कर्मण्यण् (पा०सू० ३.२.१)। और हमारा मन सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला और जो मन इन्द्रिय से पूर्व उसकी रचना हुई। अथवा अपूर्व अनपर अबाह्य ऐसा कहने पर अपूर्व आत्मरूप यह अर्थ है। और जो योग यज्ञ में पूजनीय होकर के एकीभूत हो रहा हो। यजते औणादिक सन्प्रत्यय है। और जो प्राणिमात्र के हृदय में रहता है, अन्य इन्द्रिया तो बाहरी है, मनतो आन्तरिक इन्द्रिय है यह अर्थ है। वह उस स्वरूप वाला मेरा मन धर्मोष्ठ होवे।

**सरलार्थ** - कर्मनिष्ठ मेधावी पुरुष जिस मन के द्वारा यज्ञ में तथा यज्ञ के विधिविधान आदि में कार्य करते हैं और जो प्राणियों के अन्तर्भाग में रहकर के पूज्य होता है। वह मेरा मन शुभसङ्कल्प वाला हो।

### व्याकरण

- **कर्माणि** - कर्मशब्द का द्वितीयाबहुवचन में।
- **कृण्वन्ति** - कृ-धातु से लट प्रथमपुरुष एकवचन में रूप, कुर्वन्ति इसका वैदिकप्रयोग है।
- **अपसः** - अपस् + विन्।
- **यज्ञम्** - यज्-धातु से घञ्प्रत्यय करने पर यज्ञम् रूप बनता है।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।

यस्मान्ऽऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनं शिवसंकल्पमस्तु॥३॥

**पदपाठ** - यत् प्रज्ञानमिति प्र-ज्ञानम्। उत। चेतः। धृतिः। च। यत्। ज्योतिः। अन्तः। अमृतम्। प्रजास्विति प्र-जासु यस्मात्। न। ऋते। किम्। चन। कर्म। क्रियते। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिव- संङ्कल्पम्। अस्तु॥३॥

**अन्वय** - यत् प्रज्ञानम् उत चेतः धृतिः च यत् प्रजासु अन्तः अमृतं ज्योतिः। यस्मात् ऋते किञ्चन कर्म न क्रियते, तत् मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु।

**व्याख्या** - जो मन प्रज्ञा को विशेष करके ज्ञान का अच्छी प्रकार से बोध कराता है वह प्रज्ञानम् है। 'करणाधिकरणयोश्च' (पा०सू० ३.३.११७) इससे करण में ल्युट् प्रत्यय किया। और भी जो



टिप्पणियाँ

मनस्मृति का साधक है। 'चित्ती संज्ञाने' इस ण्यन्तहोने से असुन्प्रत्यय हुआ। सामान्य विशेष ज्ञान का बोध कराने वाला यह अर्थ है। और जो मन धैर्य स्वरूप है। मन में ही धैर्य की उत्पत्ति होने से मन में कार्य कारण के अभेद होने से धैर्य को धारण करता है। और जो मन प्रजाओं में, मनुष्यों में अन्तरवर्तमान होने से सभी इन्द्रियों का ज्योति प्रकाशक है। कहाँ होने पर आदर के लिए पुनः कहते हैं। 'अभ्यासे भूयांसमर्थ मन्यन्ते' (निरु० १.४२) ऐसा यास्क ने कहा। और आत्मरूप होने से आमरण दरमि होने से विनाश रहित है। जिस मन के बिना मनुष्य कोई भी कार्य नहीं कर सकते हैं। सभी कार्यों को करने से पहले प्राणियों का मन पूर्वप्रवृत्त होता है, मन के स्वास्थ्य के बिना कार्यों में प्रवृत्त नहीं होता है यह अर्थ है। अन्यारादितरते (पा०सू० २.३.२९) इत्यादि से यस्माद् इसका ऋत के योग में पञ्चमी। वह मेरा मन कल्याणकारी हो।

**सरलार्थ** - जो मन सामान्य और विशेषज्ञान का बोध कराता है। जो धैर्यस्वरूप विद्यमान है। और जो प्राणियों के अन्तर्भाग में विद्यमान सभी इन्द्रियों का प्रकाशक है। और जो विनाश रहित है। जिसके बिना कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार का जो मेरा मन है वह शुभ सङ्कल्प वाला हो।

#### व्याकरण

- **प्रज्ञानम्** - प्रकर्षेण ज्ञायते येन तत् प्रज्ञानम्। प्रपूर्वक ज्ञाधातु से ल्युट्प्रत्यय करने पर (अन्) प्रज्ञानम् रूप बनता है।
- **चेतः** - चिद्-धातु से णिच् असुन्प्रत्यय करने पर चेतः रूप बनता है।
- **धृतिः** - धृ-धातु से क्तिन्प्रत्यय करने पर धृतिः रूप बनता है।
- **क्रियते** - कृ-धातु से कर्म लट् प्रथमपुरुष एकवचन में क्रियते रूप बनता है।



#### पाठगत प्रश्न 23.1

1. शिवसङ्कल्पसूक्त का ऋषि कौन है, छन्द क्या, और देवता कौन है?
2. शिवसङ्कल्प यहाँ पर शिव शब्द का क्या अर्थ है?
3. दूरङ्गमम् यहाँ पर प्रत्यय क्या है?
4. आत्मा किसके साथ जुड़ती है?
5. कृण्वन्ति इसका लौकिक रूप क्या है?
6. अपसः यहाँ पर इष्ट के अभाव होने पर भी विन का लुक् कैसे हुआ?



7. प्रज्ञानम् इसका क्या अर्थ है?
8. धृति इसका क्या अर्थ है?
9. यस्मान्न ऋते इस मन्त्र के अंश में किस सूत्र से पञ्चमी होती है?
10. प्रज्ञानम् यहाँ पर ल्युट् किस अर्थ में है?

### 23.1.2 मूलपाठ की व्याख्या

येनेदं भूतं भुवनं भविष्य-त्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।  
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥४॥

पदपाठ - येन। इदम्। भूतम्। भुवनम्। भविष्यत्। परिगृहीतमिति परिगृहीतम्। अमृतेन। सर्वम्॥  
येन। यज्ञः। तायते। सप्तहोतेति सप्त-होता। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिव-सङ्कल्पम्।  
अस्तु॥४॥

अन्वय - येन अमृतेन (मनसा) इदं भूतं भुवनं भविष्यत् सर्वं परिगृहीतम्। येन सप्तहोता यज्ञः तायते तत् मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु।

व्याख्या - जिस मन से इसके चारो और विद्यमान वस्तुओं का ज्ञान है। यहाँ क्या हुआ। भूतकालसम्बन्धि वस्तुओं का। भुवन वर्तमान काल को कहते हैं। भू से क्युप्रत्यय करने पर वर्तमानकालसंबन्धि है। भविष्यत् 'लृटः सद्वा' (पा०सू० ३.३.१४) इससे शतृप्रत्यय करने पर 'तौ सत्' (पा०सू० ३.२.१२७) इसके कहने पर त्रिकालसंबद्ध वस्तुओं में मन प्रवृत्त होता है यह अर्थ है। श्रोत्र आदि के द्वारा तो प्रत्यक्ष ही ग्रहण करता है। यह किस प्रकार के ज्ञान को ग्रहण करता है। अमृत शाश्वत होने से। मुक्तिपर्यन्त श्रोत्र आदि का तो नाश होता है परन्तु मन तो अमर है। और जिस मन के द्वारा यज्ञ अग्निष्टोम आदि को आगे विस्तृत करते हैं। 'तनोतेर्यकि' (पा०सू० ६.४.४४) इससे आकार। किस प्रकार का यज्ञ। सप्तहोता सात होता के द्वारा देवों का आह्वान करते हैं, अर्थात् होतृमैत्रवरुण आदि सात होता है। अग्निष्टोम में सात होता है। वह मेरा मन शुभ सकल्प वाला हो।

सरलार्थ - जिससे विनाश रहित धर्म वाले संसार का भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यत्काल के सभी पदार्थ जाने जाते हैं। जिसके द्वारा सात होता विशिष्ट अग्निष्टोम आदि यज्ञ का सम्पादन किया जाता है। वह मेरा मन शुभसङ्कल्प वाला हो।

### व्याकरण

- भुवनम् - भूधातु से क्युप्रत्यय करने पर भुवनम् रूप बनता है।
- तायते - तन्-धातु से कर्म लट प्रथमपुरुष एकवचन में।
- भविष्यत् - भूधातु से लृट् शतृप्रत्यय करने पर भविष्यत् रूप बनता है।



टिप्पणियाँ

- सप्तहोता - सप्त होतारः यस्मिन् स सप्तहोता। और वे होता, पोता, मैत्रावरुण, ग्राववरुण, ब्राह्मणाच्छंदस, आच्छावाक और अग्नीद है।

यस्मिन्च सामयजूषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविंवारा।  
यस्मिँश्चित्त सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनं शिवसङ्कल्पमस्तु॥५॥

पदपाठ - यस्मिन्। ऋचः। सामं। यजूषि। यस्मिन्। प्रतिष्ठिता। प्रतिस्थितेति प्रति-स्थिता।  
रथनाभाविवेति-रथनाभौ। इव। अराः॥ यस्मिन्। चित्तम्। सर्वम्। ओतमित्या-उतम्। प्रजानामिति  
प्र-जानाम्। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिव-सङ्कल्पम्। अस्तु॥५॥

अन्वय - यस्मिन् ऋचः यस्मिन् साम यजूषि रथनाभौ अराः इव प्रतिष्ठिताः यस्मिन् प्रजानां सर्व  
चित्तम् ओतं तत् मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु।

व्याख्या - जिस मन में ऋग्वेद प्रतिष्ठित है। जिसमें सामवेद प्रतिष्ठित है। जिसमें यजुर्वेद प्रतिष्ठित  
है। स्वस्थ मन में ही वेदत्रयी प्रकट होते हैं, इस मन में शब्द मात्र स्थिर होते हैं 'अन्नमयं हि  
सोम्य मनः' इति छान्दोग्य में स्वस्थ मन से ही वेदों का उच्चारण प्रतिपादित किया गया है। वहाँ  
दृष्टान्त है। जैसे रथ के पहियों में लकड़ी के अरा लगे होते हैं। जैसे अरा रथचक्र के मध्य में  
प्रतिष्ठित होते हैं, उसी प्रकार शब्दजाल मन में स्थिर रहता है। और जिसमें प्राणियों के सम्पूर्ण  
सभी पदार्थविषयज्ञान धागे में मणियों के समान युक्त रहता है। स्वस्थ मन में ही ज्ञान की उत्पत्ति  
और मन के प्रतिकूल आचरण से ही ज्ञान का अभाव होता है। वह मेरा मन शिवसङ्कल्प हो।

सरलार्थ - जिसमें ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद चक्रनाभि में विद्यमान अरा के समान विद्यमान है  
और भी जिसमें प्राणियों के सभी पदार्थ विषयक ज्ञान है। वह मेरा मन शुभसङ्कल्प वाला हो।

### व्याकरण

- प्रतिष्ठिताः - प्रतिपूर्वक स्थाधातु से क्तप्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में प्रतिष्ठिताः रूप  
है।
- ओतम् - आपूर्वक तन्तुसन्तानात् वेञ्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर ओतम् रूप बनता है।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव।  
हत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनं शिवसङ्कल्पमस्तु॥६॥

पदपाठ - सुषारथिः। सुसारथिरिति सु-सारथिः। अश्वानिवेत्यश्वान्- इव। यत्। मनुष्यान्।  
नेनीयते। अभीशुभिरित्यभीशु-भिः। वाजिनऽइवेति-वाजिनः-इव। हत्प्रतिस्थमिति हत्-प्रतिस्थम्।  
यत्। अजिरम्। जविष्ठम्। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिव-सङ्कल्पम्। अस्तु॥६॥

अन्वय - यत् (मनः) मनुष्यान् सुषारथिः अश्वन् इव नेनीयते अभीषुभिः वाजिन इव(मनुष्यान् कर्मषु  
प्रेरयति) यत् हत्प्रतिष्ठम् अजिरं जविष्ठं तत् मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु।



**व्याख्या** – जो मन जैसे सुंदर घोड़े के समान, लगाम से घोड़ों को सब ओर चलाता है, वैसे ही मनुष्य आदि प्राणियों को शीघ्र ही इधर उधर भ्रमण कराता है। नयते: क्रियासमभिहारे यङ् हुआ। मन के प्रेरित करने पर ही प्राणि कार्य में प्रवृत्त होते हैं। मनुष्य ग्रहण प्राणिमात्र का उपलक्षक है। वहाँ उदाहरण है। जैसे चतुर सारथि लगाम से घोड़ों को इधर उधर अपने वश में चलाता है। रस्सियों से जैसे ले जाता है। दो उपमा है। प्रथम ले जाना और दूसरी नियमन। वैसे ही मन मनुष्यों को कार्य में प्रवृत्त करता है और लेकर जाता है। और जो मन हृदय में प्रतिष्ठित है। और जो मन विषय आदि में प्रेरक वा वृद्धादी अवस्था से रहित है। और जो अत्यन्त वेगवान है 'न वै वातात् किञ्चनाशीयोस्ति न मनसः किञ्चनाशीयोस्ति' इति श्रुति। वह मेरा मन मंगलमय हो।

**सरलार्थ** – जैसे कोई चतुर सारथि घोड़ों को सही चलाता है। वह जैसे चाहता है वैसे ही उनको लेकर के जाता है। इसी प्रकार मन भी प्राणियों के शरीर को चलाता है। और जो हृदय में स्थित वृद्धावस्था से रहित अत्यन्त ही वेगवान वह मेरा मन मंगलमय हो।

### व्याकरण

- **नेनीयते** – नी-धातु से यङ् लट् प्रथमपुरुष एकवचन में नेनीयते रूप बनता है।
- **अभीषुभिः** – अभिपूर्वक इष्-धातु से उप्रत्यय करने पर तृतीयाबहुवचन में अभीषुभिः रूप बनता है।
- **वाजिनः** – वज्-धातु से णिनिप्रत्यय करने पर द्वितीयाबहुवचने में वाजिनः रूप बनता है।
- **जविष्ठम्** – जुधातु से इष्ठन्प्रत्यय करने पर जविष्ठम् रूप बनता है।
- **प्रतिष्ठम्** – प्रपूर्वकस्थाधातु से कप्रत्यय करने पर प्रतिष्ठम् रूप बनता है।



### पाठगत प्रश्न 23.2

1. येनेदं भूतं भूवनम् इस मन्त्रांश में येन इसका क्या तात्पर्य है?
2. सात होता कौन है?
3. तायते इसका क्या अर्थ है?
4. मन में वेद कैसे स्थिर होते हैं?
5. ओतम् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
6. भुवनम् यहाँ पर क्या प्रत्यय है?
7. अजिरम् इसका क्या अर्थ है?
8. जविष्ठम् इसका क्या अर्थ है?
9. अभीषुभिः इसका क्या अर्थ है?
10. नेनीयते यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?





टिप्पणियाँ

## 23.2 शिवसङ्कल्पसूक्त का सार

छः मन्त्र वाले इस सूक्त के ऋषि याज्ञवल्क्य, मनो देवता, त्रिष्टुप् छन्द है। इस सूक्त में ऋषि कहते हैं की जो मन जागने वाले पुरुष का दूर जाता है, और सोने वाले मनुष्य का वही मन वैसे ही समीप आता है अर्थात् जैसा गया है वैसे ही वापस आता है। और जो दूर से जाता है, जो मन आत्म साक्षात्कार में साधन है, और जो मन प्रकाशकों का श्रोत्र आदि इन्द्रियों का एक ही ज्योति प्रवर्तक है, सभी शरीर का चालक वह मेरा मन शुभसङ्कल्पों से युक्त हो। अर्थात् मेरे मन में हमेशा धर्म ही हो कभी भी पाप नहीं हो। कर्मवान, बुद्धिमान, मेधावी जिस मन से कार्य करते हैं, जिससे बुद्धिमान यथाविधि यज्ञ का सम्पादन करते हैं, और जो अपूर्व, सभी इन्द्रियों से पूर्व जिसकी रचना हुई, सभी प्राणियों में विद्यमान और पूज्य वह मेरा मन शुभ सङ्कल्प से युक्त हो। जो मन प्रज्ञा को विशेष रूप से ज्ञान कराता है, और भी जो मन सामान्य ज्ञान को उत्पन्न करने वाला है, जो मन धृति धैर्य स्वरूप, जो मन अमरण धर्मी, जो मन प्रजाओं में अन्तर वर्तमान होने से सभी इन्द्रियों का प्रकाशक है, जिसके बिना कोई भी कार्य पूर्ण नहीं किया जा सकता है वह मेरा मन शुभसङ्कल्प से युक्त हो। जिस मन के द्वारा यह सभी सब कुछ जाना गया है, और जिस मन से भूतकाल सम्बन्धी वस्तु, वर्तमानकाल सम्बन्धी वस्तु, और भविष्यत्काल सम्बन्धी वस्तु का ज्ञान होता है, जिस मन के द्वारा होतृमैत्रावरुण आदि सात होता युक्त अग्निष्टोमयज्ञ को विस्तृत करते है वह मेरा मन शुभसङ्कल्प से युक्त हो। जैसे रथ के दोनों और आरे होते है ठीक वैसे ही मन ही सभी ऋचाओं में प्रतिष्ठित होते है। साम में प्रतिष्ठित है। और यजुर्वेद में प्रतिष्ठित है। पट में जैसे ओतप्रोतरूप से धागे विद्यमान रहते है वैसे ही जिस मन में सभी पदार्थ विषयक ज्ञान निहित है उस प्रकार का मेरा मन शुभसङ्कल्पयुक्त हो। जैसे अच्छा सारथि अपने रथ के वेगयुक्त घोड़ों को इधर-उधर लेकर जाता है और जैसे उनको नियन्त्रित करता है, वैसे ही जो मन मनुष्यों को सभी कार्यों में प्रवृत्त करता है उन्हें उस कार्य में लगाता है, और जो मन हृद् देशवाशी है, और जो जरारहित, और जो उत्पन्न हुए बालकों में, युवकों में और वृद्धों में एक समान है, वह मेरा मन शुभसङ्कल्प से युक्त हो।

## 23.3 मन का स्वरूप

शुक्लयजुर्वेद-शिवसङ्कल्पसूक्त में मन के स्वरूप विषय को प्राप्त करते हैं। मन जाग्रतावस्था में पुरुष से दूर जाता है। चक्षु आदि की अपेक्षा से दूर जाता है यह तात्पर्य है। वैसे ही सुषुप्ति अवस्था में पुरुष के निकट आता है। परमात्मा का ज्ञान मन के द्वारा ही सम्भव है। 'मनसैवेदमाप्तव्यम्' यह श्रुति यहाँ प्रमाण है। जो अप्रमेय, निश्चल, आत्मतत्त्व उसको मन से ही देखना चाहिए। 'मनसैवानुद्रष्टव्यम्' इति श्रुति है। मन ही दूर जाने वाला है। बहुत दूर जाता है यह अर्थ है। अथवा अतीत अनागतवर्तमान में प्रयोग करने वाले पदार्थों का ग्राहक है। मन ही ज्योतियों के विषयप्रकाशकों का श्रोत्र आदि इन्द्रियों का, ज्योति प्रकाशक प्रवर्तक है। श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों को शब्द आदि का ग्रहण करते हैं। वहाँ विषय ज्ञान में मन कारण है। आत्मा मन के संयोग के

बिना कुछ भी ज्ञान श्रोत्र आदि इन्द्रियों के द्वारा सम्भव नहीं है। अतः मन के विना श्रोत्र आदि इन्द्रियों के होने पर भी शब्द आदि का ज्ञान सम्भव नहीं है। मन के स्वास्थ्य के विना कर्म में प्रवृत्त यज्ञ में हवि प्रदान आदि कर्म को नहीं कर सकता है। इसलिए कर्मशील बुद्धिमान और मेधावी मन के द्वारा ही यज्ञादि कर्म करते हैं। और इन्द्रियों से पहले मन की रचना की और मन की पहले रचना होने से वह अपूर्व है। मन प्रज्ञान, विशेष ज्ञान का बोध कराता है। और चित “चेतयति सम्यग् ज्ञापयति इति चेतः”। वह मन सामान्य विशेषज्ञान का बोध कराता है, यह सिद्ध होता है। और मन धैर्यस्वरूप, मरणरहित, सभी प्राणियों के अन्तर विद्यमान, सभी इन्द्रियों का प्रकाशक है। मन के बिना कोई भी कार्य नहीं होता है। त्रिकालसम्बन्धी वस्तुओं में मन प्रवृत्त करता है। मन के द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञान होता है। मन के द्वारा होतृमैत्रावरुण आदि सात होता से युक्त अग्निष्टोमयज्ञ का विस्तार करता है। रथनाभि में जैसे आरे प्रतिष्ठित होते हैं वैसे ही मन ही सम्पूर्ण वेदराशि में प्रतिष्ठित है। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद ये तीनों ही मन में प्रतिष्ठित हैं। और ज्ञान का आधार भी मन है। वैसे ही जैसे पट में धागे ओतप्रोत रूप से हैं वैसे ही प्रजाओं का सभी ज्ञान मन में रहता है। सारथि जैसे घोड़ों को अपने हाथ से इधर उधर करता हुआ और नियन्त्रित करता है उसी प्रकार मन भी मनुष्यों को इधर उधर करता हुआ और नियन्त्रित करता है। इस जगत् में विद्यमान सभी वेगवान वस्तुओं में अधिकवेग मन का होता है। बाल्ययौवन और वृद्धावस्था में भी मन एक समान रहता है। और अन्यत्र वेद में भी कहा गया है - “न वै वातात्किञ्चनाशीयोस्ति न मनसः किञ्चनाशीयोस्ति” इति। इस प्रकार मन का निवासस्थान प्राणियों का हृदय प्रदेश होता है।



### शिवसङ्कल्पसूक्त अंश का पाठसार

इस शिवसङ्कल्पसूक्त में मन की अनेक प्रकार से व्याख्या की है। और वह शिवसङ्कल्प हो ऐसी प्रार्थना भी की है। वहाँ प्रारम्भ मन्त्र में कहा की जो दूरगामी और ज्योतियों में अद्वितीय मन वह शुभसङ्कल्प वाला हो। उसके बाद में द्वितीय मन्त्र में कहा गया है की कर्मनिष्ठ मेधावि जिसके द्वारा यज्ञ में यज्ञ की विधि और विधानों में कार्य करता है वह मन शुभसङ्कल्प वाला हो। इसी प्रकार तृतीय मन्त्र में कहा की सभी इन्द्रियों का प्रकाशक अमरण धर्म वाला धैर्यस्वरूपशुभसङ्कल्प वाला होऐसा कहा गया है। उसके बाद चतुर्थ मन्त्र में कहा गया है की जिसके द्वारा भूतभविष्य अतीतपदार्थों का ज्ञान होता है और सात होता विशिष्ट यज्ञको सम्पादित करता है। वह मन शुभसङ्कल्प हो। इसी प्रकार पञ्चम मन्त्र में कहा की जिसमें ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद और अथर्ववेद है। इस प्रकार वह मनशुभसङ्कल्प वाला हो। षष्ठमन्त्र में मन शरीरके परिचालक के रूप में उसे प्रतिपादित किया। इस प्रकार मन विविधप्रकार से प्रदर्शित किया। और वह शुभसङ्कल्प वाला भी हो ऐसी प्रार्थना करते हैं।



## प्रजापतिसूक्त

वेद चार हैं- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। और यजुर्वेद के शुक्लकृष्णभेद से दो प्रकार का है। उन दोनों में शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनसंहिता का बतीसवें अध्याय में सर्वमेघ के मन्त्र लिखे हुए हैं। बतीसवें अध्याय के प्रारम्भ में ही हिरण्यगर्भ का विचार है। उसके साथ ही प्रजापति का विवेचन भी किया है। वह ही अग्नि, वह ही आदित्य, वह ही वायु, वह ही चन्द्रमा, वह ही तेज, वह ही प्रार्थना, वह ही जल है। इस प्रकार से प्रजापति का वर्णन है। शुक्लयजुर्वेद का यह सूक्त बतीसवें अध्याय में पढ़ा हुआ है।

### 23.4 मूलपाठ ( प्रजापतिसूक्त )

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तद् चन्द्रमाः।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥१॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिं जग्रभत्॥२॥

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।

हिरण्यगर्भ इत्येष मा मां हिंसीदित्येषा यस्मान्ना ज्ञात इत्येषः॥३॥

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।

स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥४॥

यस्माज्जातं न पुरा किं च नैव य आब्रूव भुवनानि विश्वा।

प्रजापतिः प्रजया संरण स्त्रीणिज्योतीषि सचते स षोडशी॥५॥

#### 23.4.1 मूलपाठ की व्याख्या ( प्रजापतिसूक्त ) : श्लोक 1-5

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तद् चन्द्रमाः।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥१॥

पदपाठ - तत्। एव। अग्निः। तत्। आदित्यः॥ तत्। वायुः। तत्। ओंऽइत्यँ। चन्द्रमाः। तत्। एव। शुक्रम्। तत्। ब्रह्म। ताः। आपः। सः। प्रजापतिर्घरति प्रजा। पतिः॥१॥

अन्वय - तत् एव अग्निः, तत् आदित्यः, तत् वायुः, तत् उ चन्द्रमाः, तत् एव शुक्रम्, तत् ब्रह्म, ताः आपः, सः प्रजापतिः (वर्तते)॥१॥

व्याख्या - पुरुषमन्त्र कहे हैं। अब सर्वमेघ यहाँ मन्त्र कहते हैं- प्रवायुमच्छेत् इससे पहले (३३/५५)। स्वयंभु ब्रह्मद्रष्टा आत्म देवता सात दिन में होने वाला आप्तोर्यामसंज्ञक सर्वहोम में विनियोग करने लगे 'आप्तोर्यामः सप्तममहर्भवति' इत्युपक्रम्य 'सर्वं जुहोति सर्वस्यास्यै सर्वस्यावरुध्दै' (१३/७/१/९)



इति श्रुतिया। दो अनुष्ठान। विज्ञानात्मा विशिष्ट अग्न्यादियों से ओतप्रोत होने से इसको जाना जाता है। उस ब्रह्म के कारण से ही अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा उसके कारण से ही है। उसी अर्थ में है। शीघ्रकारी वा शुद्ध भाव से वह शुक्र प्रसिद्ध है। वह ब्रह्म महान लक्षण होने से ही ब्रह्म है। और सब जगह व्यापक होने से प्रसिद्ध आप, जल तथा सब प्रजा का स्वामी होने से प्रसिद्ध प्रजापति वह ब्रह्म ही है।

**सरलार्थ**—वह प्रजापति ही अग्नि, वह ही आदित्य, वह ही वायु, वह ही चन्द्रमा है, वह ही तेज है, वह ही ब्रह्म, और जो जल है वह भी प्रजापति ही है।

### व्याकरण

- **आपः** - अप् इस प्रातिपदिक का प्रथमान्त बहुवचनान्त रूप है।

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।  
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिं जग्रभत्॥२॥

**पदपाठ** - सर्वे। निमेषाऽइति नि। मेषाः। जज्ञिरे। विद्युतऽइति वि। द्युतः। पुरुषात्। अधि॥ न एनम्। ऊर्ध्वम्। न तिर्यञ्चम्। न। मध्ये। परिं। जग्रभत्॥२॥

**अन्वय** - सर्वे निमेषाः विद्युतः पुरुषात् अधि जज्ञिरे। एनम् न ऊर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि अजग्रत्॥२॥

**व्याख्या** - जिस परमात्मा से सब कला काष्ठ काल आदि के अवयव अधिकतर उत्पन्न होते हैं। किस प्रकार के पुरुष से। विद्युतः विशेष रूप से प्रकाशित होता है उससे। और कोई भी इस पुरुष के ऊर्ध्व भाग को प्राप्त नहीं कर सकता है। इसको तिरछा सब दिशाओं में और न ही मध्य देश में भी ग्रहण नहीं कर सकते हैं। इसको प्रत्यक्ष आदि विषयों से जाना नहीं जा सकता है, यह अर्थ है। वह यह “नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यते” श्रुति है। सब और से ग्रहण कर सकता है। ग्रहजुहोत्यादि धातु का रूप है।

**सरलार्थ** - सम्पूर्ण काल परिणाम प्रकाशमान पुरुष से ही उत्पन्न हुआ। इस परमात्मा को ऊर्ध्वभाग से, तिरछे भाग से, मध्यभाग से नहीं जाना जा सकता है।

### व्याकरण

- **जज्ञिरे** - जनी (प्रादुर्भावे) इस अर्थ की धातु से लिट्-लकार का प्रथमपुरुष के बहुवचन में रूप है।

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।  
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मां हिंसीदित्येषा यस्मान् जात इत्येषः॥३॥

**पदपाठ** - न। तस्य। प्रतिमेति प्रति। मा। अस्ति। यस्य। नाम। महत्। यशः। हिरण्यगर्भऽइति हिरण्य। गर्भः। एषः। मामेति मा। मां। हिंसीत्। इति। एषा। यस्मात्। न। जातः। इति। एषः॥३॥



टिप्पणियाँ

**अन्वय** - तस्य प्रतिमा न अस्ति यस्य महत् यशः हिरण्यगर्भः इति एषः, मा मा हिंसीत् इति, एषा यस्मान् जातः इति एषः नाम॥३॥

**व्याख्या** - दो पैर वाली गायत्री। उस पुरुष की प्रतिमा प्रतिमान परिमाण वाली कोई वस्तु नहीं है। इसलिए जिसका नामकरण भी प्रसिद्ध महान यशवाला है। जिसका यश सबसे विशाल है यह अर्थ है। हिरण्यगर्भ इत्यादि चार अनुवाक मन्त्र हिरण्यगर्भः, यः प्राणतः, यस्येमे, य आत्मदा इति (२५/१०-१३)। मा मा हिंसीज्जनितेत्येका यह (१२/१०२)। यस्मान् जातः इन्द्रश्च सम्राडिति (८/३६-३७) यह दो अनुवाक है। यह प्रतीक के रूप में पूर्व में पढ़े हुए होने से आदिमात्रा में यहाँ पर कहते हैं, ब्रह्मयज्ञ और जप में सभी को पढ़ना चाहिए। और इसी प्रकार सभी जगह पढ़ना चाहिए।

**सरलार्थ** - उस परमात्मा की उपमा कोई नहीं कर सकता है, जिसका यश आदि में उत्पन्न हुआ। यजुर्वेद के मा मा हिंसीत् इत्यादिमन्त्र के द्वारा व्याख्या की गई है।

#### व्याकरण

- **अस्ति** - अस्-धातु से लट्-लकार का प्रथमपुरुष का एकवचन में रूप है।
- **हिंसीत्** - हिंसि (हिंसायाम्) लुङ्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।

**एषो हं देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।**

**स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥४॥**

**पदपाठ** - एषः। ह। देवः। प्रदिशोऽइति प्रा। दिशः। अनु। सर्वाः। पूर्वः। ह। जातः। सः ओंऽइत्यौं गर्भे अन्तरित्यन्तः॥ सः। एव। जातः। सः। जनिष्यमाणः। प्रत्यङ्। जनाः। तिष्ठति। सर्वतोमुखऽइति सर्वतः। मुखः॥४॥

**अन्वय** - एषः देवः सर्वा प्रदिशः, सः पूर्वः ह गर्भः अन्तः जातः, सः एव जातः, स जनिष्यमाणः। जनाः, सर्वतोमुखः प्रत्यङ् तिष्ठति॥४॥

**व्याख्या** - चार त्रिष्टुभा ह प्रसिद्ध। यह देव सभी दिशाओं में व्याप्त होकर के रहता है। हे मनुष्यों, यह प्रसिद्ध सबसे पूर्व प्रथम उत्पन्न हुआ है। गर्भ के अन्त गर्भ के मध्य में वह ही निश्चित रूप से रहता है। उत्पन्न होने पर भी वह ही उत्पन्न होता है, और आगामी काल में भी वह ही होगा। प्रत्येक पदार्थ को उसने प्राप्त कर रखा है। सब और से मुख आदि इन्द्रियों के काम सर्वत्र करता है। उसकी ही तुम लोगो को उपासना करनी चाहिए।

**सरलार्थ** - यह देव सभी दिशाओं में निश्चतरूप से व्याप्त होकर के रहता है। वह ही निश्चित रूप से गर्भमध्य में उत्पन्न हुआ। वह ही ही उत्पन्न होता है और वह ही उत्पन्न होगा। हे मनुष्य, सभी जगह मुखविशिष्ट अर्थात् जिसके विषय में कोई सोच नहीं सकता उस प्रकार की शक्तिसम्पन्न वह परमात्मा प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त होकर के रहता है।



### व्याकरण

- **जातः** - जनी (प्रादुर्भावे) इस अर्थ की धातु से तप्रत्ययान्त का यह रूप है।
- **जनिष्यमाणः** - जनी (प्रादुर्भावे) इस अर्थ की धातु से शानच्-प्रत्ययान्त का रूप है।

यस्माज्जातं न पुरा किं च नैव य आबभूव भुवनानि विश्वा।  
प्रजापतिः प्रजया संरराण स्त्रीणिज्योतीषि सचते स षोडशी॥५॥

पदपाठ - यस्मात्। जातम्। न। पुरा। किम्। च। न। एव। यः। आऽबभूवेत्या। बभूव। भुवनानि। विश्वा॥ प्रजापतिरिति प्रजा। पतिः। प्रजयेति प्र। जया। संरराणऽइति सम्। रराणः। त्रीणि। ज्योतीषि। सचते। सः षोडशी॥५॥

अन्वय - यस्मात् पुरा किञ्चन न जातम्, यः एव विश्वा भुवनानि आबभूव, षोडशी प्रजापतिः प्रजया संरराण - त्रीणि ज्योतीषि सचते॥५॥

**व्याख्या** - जिससे पहले कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ। और जिसमें सब वस्तुओं के आधार सब लोक वर्तमान है। अन्तर्भूत है। वह ही सोलह कला वाले लिङ्ग शरीर प्रजापति के साथ प्रजा का रक्षक तीन ज्योति बिजली, सूर्य और चंद्रमा को संयुक्त करता है।

**सरलार्थ** - जिस प्रजापति से पहले कुछ भी उत्पन्न नहीं था, जिस प्रजापति ने सम्पूर्णलोक की रचना की और उसके चारों ओर व्याप्त है, सोलह अवयव से विशिष्ट प्रजापति प्रजा के साथ रमण करता हुआ तीन तेज को धारण करता है।

### व्याकरण

- **जातः** - जनी (प्रादुर्भावे) इस अर्थ की धातु से तप्रत्ययान्त का रूप है।
- **आबभूव** - आङ् इस उपसर्गपूर्वक भू (सत्तायाम्) इस अर्थ की धातु से लिट्-लकार का प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।



### पाठगत प्रश्न 23.3

1. त्रयीलक्षण क्या है?
2. प्रजापति कौन है?
3. सम्पूर्ण कालपरिणाम कहाँ से उत्पन्न हुआ?
4. इस परमात्मा को ऊर्ध्वभाग से, तिर्यग्भाग से, मध्यभाग से जाना जा सकता है की नहीं?
5. प्रजापतिसूक्त किस वेद के अन्तर्गत होता है?
6. प्रजापतिसूक्त में कितने मन्त्र हैं?
7. प्रजापतिसूक्त का देवता कौन है?



टिप्पणियाँ

### 23.5 प्रजापतिसूक्त का सार

शुक्लयजुर्वेद के सूक्तसंग्रह में यह अन्यतम प्रजापतिसूक्त है। यह सूक्त शुक्लयजुर्वेद के बतीसवें अध्याय में है। इस सूक्त में पांच मन्त्र विद्यमान हैं। इस सूक्त का हिरण्यगर्भ ऋषि, प्रजापति देवता, और त्रिष्टुप् छन्द है। इस ब्रह्मयज्ञ जप में विनियोग है। तैत्तिरीयसंहिता वेद में कहा गया है-

**प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः प्रजापतेरनुरूपत्वाय॥ ( ५.५.१.२ )**

इस श्रुति से सोने के अण्ड के गर्भभूत प्रजापति ही हिरण्यगर्भ के नाम से जाने जाते हैं। माया के अध्यक्ष होने से परमात्मा इस संसार को उत्पन्न करते हैं। वेदों में अनेक रूपों में प्राकृतिक शक्ति के रूप में देवतारूप से उसकी परिकल्पना की गई और हमारे द्वारा जिसकी स्तुति की जाती है। परन्तु इस सूक्त में उस प्रकार की कोई कल्पनादि विद्यमान नहीं है। यहाँ मेधा बुद्धि वाले ऋषियों का सृष्टितत्त्व विषय में बढ़ती हुई जिज्ञासा के रूप में इस देव की उत्पत्ति हुई, ऐसा कहा जाता है।

वेद आदि अनेक देवतावाद के वर्तमान होने में भी वे मन्त्र एक ही अद्वितीय देव की स्तुति करते हैं। वहाँ इन्द्रसूक्त में यह प्रमाण है-

**यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमृतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्॥ इति।**

उपनिषद् में भी जैसे 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' इस श्रुति से आत्मा को एकत्व प्रतिपादित करते हैं, इसी प्रकार प्रजापतिसूक्त में भी यह ही तत्त्व प्रकाशित है। वहाँ बहुदेवतावाद की उपयोगिता में सदेह करते हुए ऋषि प्रजापति को ही विश्व का, सृष्टिकर्ता मानते हैं। उससे कहा गया है -

**हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।**

**स दाधार पृथिवी द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेमा॥ इति।**

**सः प्राणदाता बलदाता च। तस्यादेशं देवाः पालयन्ति। तस्मादुक्तम् -**

**य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। इति।**

वह ही सभी प्रपञ्च का निर्माता है। उससे जैसे द्युलोक वैसे ही पृथिवीलोक भी निर्मित है। उससे स्वर्गलोक और आदित्यलोक निर्मित है। और कहा गया है -

**येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।**

**यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेमा॥ इति।**

उसने दक्ष को धारण किया। और सृष्टि के उत्पत्ति में जीवनस्वरूप जल को सभी जगह फैला दिया। देवों में वह एक ही स्वामी है। वैसे ही वेद के हिरण्यगर्भसूक्त में कहा गया है-

**यश्चिदापो महिना पर्यपश्यदृक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।**

**यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेमा॥ इति।**

प्रजापति ही इस संसार की रचना, पालन और संहार करते हैं। यह जैसे जल अन्नप्रकृति आदि जीवन को प्रदान करते हैं, और सृष्टि करते हैं। वैसे ही इस जगत की रक्षा और समय के अनुसार नाश भी करता है। उससे यह जगत का रचयिता और संहारकर्ता है। वह हिरण्यगर्भ धनेश्वर है। इसलिए हिरण्यगर्भसूक्त में कहा गया है-

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।  
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ इति शिवम्॥

### 23.6 प्रजापति का स्वरूप

विविध देवताओं का स्मरण करना ही एक परमस्वरूप की स्तुति है। उस परमपुरुष का ही एक रूप प्रजापति है। युग के अन्त में सम्पूर्ण सृष्टिजल में समाहित हो जाती है। तब सभी बीजरूप से रहते हैं, उस बीज से जो पुनः देवता मनुष्यादि की रचना करता है वह ही हिरण्यगर्भ अथवा प्रजापति है। सृष्टि के आरम्भ में वह ही अग्नि की रचना करता है, और प्रलयकाल में विस्तृत जल को अपने उदर में स्थापित करता है जिससे सृष्टि रचना दुबारा हो। निश्चित ही देवता मनुष्य आदि चेतन जीवों का और जड़ वस्तुओं का भी वह ही स्रष्टा है। उनके अपने आधारभूत योग्य भूमिभाग का भी वह ही निर्माण करता है। प्रजापति ही पृथिवीलोक और द्यूलोक की रचना करता है।

प्रजापति केवल जगत के ही स्रष्टा नहीं है अपितु इस विश्व को धारण भी वह ही करते हैं। वर्तमान भूत और भविष्य सब में वह व्याप्त होकर के रहता है। वह सूर्य का भी धारक है। भास्कर उसके आधार करने पर ही निकलता है और प्रकाश देता है। मनुष्यों के लिए जन्म मृत्यु का नियन्ता वह ही है। दिव्य देवताओं का भी वह ही अधिपति है।

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार से एक बार इन्द्र प्रजापति के समीप जाकर उसकी स्तुति की उसकी प्रार्थना की। तब प्रजापति ने कहा - तुमको अपनी विशालता प्रदान करने से मैं कौन हूँ। तब इन्द्र ने उनसे कहा - तुम जैसे कहते हो मैं वैसे ही हो जाता हूँ। उससे प्रजापति की इस नाम से भी उसकी प्रसिद्धि है।



#### पाठ सार ( प्रजापतिसूक्त )

पांच मन्त्र वाले इस सूक्त में वर्णन किया गया है की इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी दिखाई देता है, वह सब प्रजापति ही है। जिससे पहले कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ। और जिससे सभी प्राणी उत्पन्न हुए, वह सोलह अवयव वाले लिङ्ग शरीर प्रजापति ही हैं। अग्नि-आदित्य-वायु-शुक्र-ब्रह्म-ओंकार आदिरूपों के द्वारा उस प्रजापति की ही व्याख्या प्रसिद्ध रूप से की गई है। कोई भी इस पुरुष को ऊर्ध्व से ग्रहण नहीं कर सकता है। सभी निमेष काल-विशेष प्रजापति पुरुष से अधिपुरुष-से ही उत्पन्न हुए हैं। उस पुरुष की प्रतिमान कोई वस्तु नहीं कर सकती है। यह







टिप्पणियाँ

ही वेद सभी दिशाओं में व्याप्त होकर के स्थित रहता है। इसकी उत्पत्ति सबसे पहले हुई है। यह प्रसिद्ध ही है। गर्भमध्य में वह ही रहता है। वह ही उत्पन्न होता है और उत्पन्न होगा। इस प्रकार वह प्रजापति प्रजा के साथ रमण करता हुआ तीन ज्योति सूर्य, अग्नि, चन्द्र की सेवा करता है।



### पाठांत प्रश्न

#### ( शिवसंकल्पसूक्त में )

1. शिवसङ्कल्पसूक्त का सार लिखिए।
2. तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु इस मन्त्र अंश में किस प्रकार का मन शिवसङ्कल्प वाला हो?
3. यज्जाग्रतो दूरमुदैति ... इत्यादिमन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या लिखिए।
4. यस्मानृचः ... इत्यादिमन्त्र को पूर्ण करके महीधरभाष्य के अनुसार व्याख्या कीजिए।
5. सुषारथिरश्वा ... इत्यादिमन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या कीजिए।

#### ( प्रजापतिसूक्त में )

6. प्रजापतिसूक्त का सार लिखिए।
7. प्रजापति के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
8. तदेवाग्निस्तदादित्य... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
9. सर्वे निमेषा... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
10. न तस्य ... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
11. एषो ह देवः ... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
12. यस्माज्जातम् ... इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।



### पाठगत प्रश्नों के उत्तर

#### 23.1

1. आदित्य याज्ञवल्क्य ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, मन देवता।
2. कल्याणकारी।
3. खश् प्रत्यय।
4. मन के साथ।

5. कुर्वन्ति।
6. छान्दस से।
7. विशेषरूप ज्ञान का जनक।
8. धैर्यरूप।
9. अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते।
10. करण अर्थ में।

### 23.2

1. मन से।
2. होता, पोता, मैत्रावरुण, ग्राववरुण, ब्राह्मणाच्छंदसी, आच्छावाक् और अग्नीद।
3. विस्तार।
4. रथ के नाभि में जैसे आरे।
5. आपूर्वक तन्तुसन्तानवेञ्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर।
6. क्यसुप्रत्यय।
7. वृद्धावस्थ से रहित।
8. अत्यन्त वेगवान।
9. अच्छी प्रकार से ग्रहण करता है।
10. नी-धातु से यङ लट प्रथमपुरुष एकवचन में।

### 23.3

1. त्रयीलक्षणवह ब्रह्म ही है।
2. वह प्रजापति ही अग्नि है।
3. सम्पूर्ण कालपरिणाम प्रकाशमानपुरुष से उत्पन्न हुआ है।
4. इस परमात्मा को ऊर्ध्वभाग से, तिर्यग्भाग से, मध्यभाग से जाना नहीं जा सकता है।
5. शुक्लयजुर्वेद में।
6. पांच मन्त्र है
7. प्रजापति।

॥ तेबिसवाँ पाठ समाप्त ॥



टिप्पणियाँ